2026 Volume: 02 Issue: 07 www.ijrpa.com ISSN 2456-9995 Review Article

International Journal Research Publication Analysis

Page: 01-12

बोधि उपवन से वैश्विक पर्यावरण तक: संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर की धम्म-दृष्टि का विश्लेषण

राजकुमार सागर*[1], डॉ. यशपाल[2]

[1] पी.एच.डी. शोधार्थी, सम्राट अशोक सुभारती स्कूल ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज, स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ-250002, उत्तर प्रदेश, भारत

[2] डॉ. यशपाल, सहायक आचार्य, भाषा विभाग, स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ-250002, उत्तर प्रदेश, भारत

Article Received: 29 May 2026

Article Revised: 18 June 2026

Published on: 07 July 2026

***Corresponding Author: राजकुमार सागर**

पी.एच.डी. शोधार्थी, सम्राट अशोक सुभारती स्कूल ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज, स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ-250002, उत्तर प्रदेश, भारत

DOI: https://doi-doi.org/101555/ijrpa.1744

शोध सार (ABSTRACT)

वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का ह्रास तथा प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने सम्पूर्ण मानव सभ्यता के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। ऐसे समय में बौद्ध धम्म का प्रकृति-केंद्रित दर्शन मानव और पर्यावरण के मध्य संतुलित सह-अस्तित्व का एक व्यवहारिक मार्ग प्रस्तुत करता है। बौद्ध धम्म में करुणा, अहिंसा, प्रतीत्यसमुत्पाद, मध्यम मार्ग तथा समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री जैसे सिद्धांत पर्यावरणीय नैतिकता की आधारशिला माने जाते हैं। इन्हीं मूल्यों को आधुनिक सामाजिक एवं शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में मूर्त रूप प्रदान करने वाली प्रमुख हस्तियों मेंसंघमाता डॉ. मुक्ति भटनागरका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

यह शोध-पत्र संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर की धम्म-दृष्टि का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करता है कि उन्होंने बौद्ध दर्शन को केवल धार्मिक आस्था तक सीमित न रखकर शिक्षा, संस्कृति, पर्यावरण संरक्षण तथा वैश्विक मानव कल्याण के साथ जोड़ा। उनके द्वारा विकसितबोधि उपवन, बुद्ध प्रतिमाओं, स्तूपों, ध्यान स्थलों तथा हरित परिसर की अवधारणा केवल सांस्कृतिक धरोहरों का निर्माण नहीं थी, बल्कि पर्यावरणीय चेतना, आध्यात्मिक अनुशासन और मानवीय उत्तरदायित्व के समन्वित प्रतिमान का निर्माण थी। उन्होंने बोधिवृक्ष को केवल एक धार्मिक प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि जीवन, जैव विविधता, शांति और सतत विकास के प्रतीक के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया।

शोध में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि डॉ. मुक्ति भटनागर की पर्यावरण संबंधी दृष्टि आधुनिकबौद्ध पारिस्थितिकी (Buddhist Ecology) की अवधारणा के अत्यंत निकट है। उनके द्वारा विकसित शैक्षिक परिसर में वृक्षारोपण, हरित वातावरण, ध्यान एवं आध्यात्मिक पर्यटन जैसी गतिविधियों ने पर्यावरण संरक्षण को सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक कर्तव्य के रूप में स्थापित किया। उन्होंने शिक्षा संस्थानों को केवल ज्ञान के केंद्र नहीं, बल्कि प्रकृति के संरक्षण और मानवीय मूल्यों के संवर्धन के जीवंत केंद्र के रूप में विकसित करने का प्रयास किया।

यह अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) शोध पद्धति पर आधारित है तथा पुस्तकें, शोध-पत्र, बौद्ध साहित्य, संस्थागत अभिलेख एवं उपलब्ध द्वितीयक स्रोतों का उपयोग करता है। शोध का निष्कर्ष यह है कि संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर ने बौद्ध धम्म की करुणा-आधारित पर्यावरणीय चेतना को व्यवहारिक रूप प्रदान करते हुए शिक्षा, संस्कृति और प्रकृति संरक्षण के मध्य एक नवीन समन्वित

प्रतिमान प्रस्तुत किया। उनका योगदान 21वीं शताब्दी में बौद्ध धम्म, पर्यावरणीय नैतिकता और सतत विकास के समकालीन विमर्श में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

मुख्य शब्द (KEYWORDS): संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर, बोधि उपवन, बौद्ध धम्म, पर्यावरण संरक्षण, बौद्ध पारिस्थितिकी (Buddhist Ecology), धम्म-दृष्टि, करुणा, प्रतीत्यसमुत्पाद, सतत विकास, बौद्ध सांस्कृतिक विरासत, हरित परिसर, वैश्विक पर्यावरण, बोधिवृक्ष, पर्यावरणीय नैतिकता, मानव कल्याण।

डॉ. मुक्ति भटनागर (1957–2021) आधुनिक भारत की उन अग्रणी शिक्षाविदों, चिकित्सकों और समाजसेवियों में अग्रगण्य थीं, जिन्होंने शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक सेवा तथा बौद्ध धम्म के मानवीय आदर्शों को एक समन्वित दृष्टि प्रदान की। उनका संपूर्ण जीवन ज्ञान, करुणा, सेवा और नैतिक मूल्यों पर आधारित था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि शिक्षा और स्वास्थ्य केवल विकास के साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन तथा मानवीय उत्थान के प्रभावी माध्यम हैं। वेसुभारती ग्रुपतथास्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालयकी संस्थापक एवं प्रबंध न्यासी थीं। शिक्षा, बौद्ध धम्म तथा लोकसेवा के क्षेत्र में उनके असाधारण योगदान के सम्मानस्वरूप उन्हें "संघमाता"की प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित किया गया। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था, जिसमें एक दक्ष चिकित्सक, दूरदर्शी शिक्षाविद, कुशल प्रशासक, कला-संवेदनशील व्यक्तित्व तथा मानवतावादी समाजसेवी का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

डॉ. मुक्ति भटनागर का जन्म वर्ष 1957 में उत्तर प्रदेश के प्रयागराज (पूर्व नाम इलाहाबाद) में हुआ। प्रारंभिक जीवन से ही उनमें अध्ययनशीलता, अनुशासन, सेवा-भाव और नेतृत्व क्षमता के गुण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते थे। उन्होंने अपनी चिकित्सा शिक्षा देश के प्रतिष्ठितमोतीलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज, इलाहाबादसे प्राप्त की, जहाँ से उन्होंनेएम.बी.बी.एस.तथाएम.डी. (जनरल मेडिसिन)की उपाधियाँ अर्जित कीं। चिकित्सकीय प्रशिक्षण के दौरान उन्हें समाज की वास्तविक समस्याओं—विशेषतः स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक असमानता—का निकट से अनुभव प्राप्त हुआ। इसी अनुभव ने उनके मन में यह विश्वास दृढ़ किया कि केवल रोगों का उपचार समाज की समस्याओं का स्थायी समाधान नहीं हो सकता। जब तक शिक्षा, नैतिक मूल्यों, मानवीय संवेदनाओं तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का समुचित विकास नहीं होगा, तब तक समग्र सामाजिक कल्याण संभव नहीं है। यही व्यापक चिंतन आगे चलकर उनके जीवन-दर्शन, शैक्षिक मिशन तथा समाजसेवा की आधारशिला बना।

21वीं शताब्दी मानव सभ्यता के इतिहास में तीव्र वैज्ञानिक प्रगति, तकनीकी विकास और आर्थिक उन्नति का युग मानी जाती है, किन्तु इसी कालखंड में विश्व अभूतपूर्व पर्यावरणीय संकटों का भी सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापवृद्धि (Global Warming), वनों का अंधाधुंध विनाश, जैव-विविधता का क्षरण, जल एवं वायु प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन तथा पारिस्थितिक असंतुलन आज सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व के लिए गंभीर चुनौती बन चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारितसतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals–SDGs) तथा विश्व स्तर पर आयोजित विभिन्न पर्यावरणीय सम्मेलनों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल वैज्ञानिक उपायों से पर्यावरण संकट का समाधान संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए नैतिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित जीवन-दृष्टि की भी आवश्यकता है। इसी संदर्भ में बौद्ध धम्म का पर्यावरणीय दर्शन आधुनिक विश्व के लिए अत्यंत प्रासंगिक बनकर उभरता है।

बौद्ध धम्म प्रकृति को मनुष्य से पृथक सत्ता के रूप में नहीं देखता, बल्कि समस्त जीव-जगत और प्राकृतिक तत्वों को एक-दूसरे पर आश्रित मानता है।प्रतीत्यसमुत्पाद (प्रतिच्चसमुप्पाद)का सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि संसार का प्रत्येक तत्व परस्पर निर्भर है; कोई भी वस्तु या जीव स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखता। यही सिद्धांत आधुनिक पारिस्थितिकी (Ecology) के मूल विचारों से भी सामंजस्य स्थापित करता है। बुद्ध का धम्म

मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका सह-अस्तित्वकारी (Co-existence Partner) मानता है। करुणा (Karuṇā), मैत्री (Mettā), अहिंसा (Ahiṃsā), संयम (Saṃyama) और मध्यम मार्ग (Majjhimā Paṭipadā) जैसे बौद्ध सिद्धांत केवल मानवीय व्यवहार के नियम नहीं हैं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण के नैतिक आधार भी हैं।

बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाएँ भी प्रकृति के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। उनका जन्म लुम्बिनी के शालवन में हुआ, बोधगया के पीपल वृक्ष (बोधिवृक्ष) के नीचे उन्हें सम्यक् संबोधि प्राप्त हुई, सारनाथ के मृगदाव में उन्होंने प्रथम धम्मदेशना दी और कुशीनगर के शाल वृक्षों के मध्य उन्होंने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया। यह केवल ऐतिहासिक संयोग नहीं, बल्कि इस तथ्य का दार्शनिक संकेत है कि बुद्ध का संपूर्ण जीवन प्रकृति के साथ गहरे तादात्म्य का प्रतीक था। इसलिए बौद्ध परंपरा में वृक्ष, वन, पर्वत, नदियाँ और जीव-जंतु केवल भौतिक संसाधन नहीं, बल्कि धम्म के जीवंत अंग माने गए हैं।

आधुनिक युग में जब पर्यावरण संरक्षण का प्रश्न केवल सरकारी नीतियों तक सीमित नहीं रह गया है, तब समाज के विभिन्न वर्गों, शैक्षिक संस्थानों और सामाजिक संगठनों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। इसी संदर्भ मेंसंघमाता डॉ. मुक्ति भटनागरका योगदान विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने पर्यावरण संरक्षण को केवल वृक्षारोपण या हरित अभियान तक सीमित न रखकर उसे बौद्ध धम्म की करुणा, सह-अस्तित्व और लोकमंगल की भावना से जोड़ा। उनके विचार में पर्यावरण संरक्षण केवल प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा का विषय नहीं, बल्कि मानव के नैतिक चरित्र, सामाजिक उत्तरदायित्व और आध्यात्मिक चेतना का भी प्रश्न है।

डॉ. मुक्ति भटनागर ने शिक्षा, चिकित्सा और समाज सेवा के साथ-साथ पर्यावरणीय चेतना को भी अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाया। स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय परिसर में स्थापितबोधि उपवन, बुद्ध प्रतिमाएँ, स्तूप, ध्यान स्थल तथा हरित परिसर उनकी दूरदर्शी पर्यावरणीय सोच के सशक्त उदाहरण हैं। इन स्थलों का उद्देश्य केवल परिसर की सौंदर्यवृद्धि नहीं था, बल्कि विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा समाज के विभिन्न वर्गों में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, धम्म के प्रति आस्था और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का विकास करना था। उन्होंने बोधिवृक्ष को केवल बौद्ध श्रद्धा का प्रतीक नहीं माना, बल्कि उसे जीवन, ज्ञान, संतुलन और सतत विकास की वैश्विक चेतना का प्रतीक रूप प्रदान किया।डॉ. मुक्ति भटनागर की धम्म-दृष्टि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि उन्होंने पर्यावरण संरक्षण को शिक्षा के माध्यम से जन-आंदोलन का स्वरूप देने का प्रयास किया। उनके नेतृत्व में विश्वविद्यालय परिसर में विकसित हरित वातावरण, औषधीय पौधों का संरक्षण, स्वच्छता, जल संरक्षण, प्राकृतिक सौंदर्य तथा सांस्कृतिक धरोहरों के विकास ने विद्यार्थियों में पर्यावरणीय नैतिकता का विकास किया। उनका विश्वास था कि यदि शिक्षण संस्थान स्वयं पर्यावरणीय आदर्श प्रस्तुत करें, तो विद्यार्थी केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं रहेंगे, बल्कि प्रकृति संरक्षण को अपने जीवन का व्यवहारिक मूल्य बनाएँगे।

आज विश्व में Buddhist Ecology (बौद्ध पारिस्थितिकी)एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन-विषय के रूप में विकसित हो चुका है। यह विचारधारा बौद्ध दर्शन के सिद्धांतों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण, जलवायु न्याय, जैव-विविधता तथा सतत विकास की व्याख्या करती है। डॉ. मुक्ति भटनागर के कार्यों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि उनके प्रयास इसी आधुनिक बौद्ध पारिस्थितिकी की अवधारणा से अत्यंत निकटता रखते हैं। उन्होंने पर्यावरण संरक्षण को केवल वैज्ञानिक कार्यक्रम न मानकर सांस्कृतिक चेतना, नैतिक शिक्षा और आध्यात्मिक अनुशासन के साथ जोड़ा। इस प्रकार उनका योगदान केवल संस्थागत विकास तक सीमित नहीं रहा, बल्कि पर्यावरण और धम्म के मध्य एक जीवंत संबंध स्थापित करने का प्रयास भी था।

उनकी दृष्टि मेंबोधि उपवनकेवल वृक्षों का समूह नहीं था, बल्कि एक ऐसा आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परिसर था जहाँ प्रकृति, ध्यान, शिक्षा और मानवता का समन्वय अनुभव किया जा सके। यह अवधारणा आज के "ग्रीन कैंपस", "ईको-स्पिरिचुअलिटी" तथा "सस्टेनेबल एजुकेशन" जैसे

वैश्विक विमर्शों से पूर्णतः सामंजस्य रखती है। उन्होंने यह संदेश दिया कि यदि मनुष्य अपने भीतर करुणा, संयम और सह-अस्तित्व की भावना विकसित करे, तो पर्यावरण संरक्षण स्वतः उसके जीवन का स्वाभाविक आचरण बन जाएगा।

यह शोध-पत्र संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर की धम्म-दृष्टि का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि उन्होंने बौद्ध धम्म के मूल सिद्धांतों को पर्यावरण संरक्षण, सांस्कृतिक विरासत और वैश्विक मानव कल्याण के साथ किस प्रकार जोड़ा। अध्ययन का उद्देश्य केवल उनके द्वारा किए गए पर्यावरणीय कार्यों का विवरण प्रस्तुत करना नहीं है, बल्कि उनकी विचारधारा के उस व्यापक आयाम को समझना है जिसमेंबोधि उपवन स्थानीय हरित पहल से आगे बढ़कर वैश्विक पर्यावरणीय चेतना का प्रतीक बन जाता है।

प्रस्तुत शोध गुणात्मक (Qualitative) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धति पर आधारित है। इसमें बौद्ध ग्रंथों, पर्यावरण संबंधी समकालीन साहित्य, शोध-पत्रों, पुस्तकों तथा डॉ. मुक्ति भटनागर से संबंधित उपलब्ध द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन किया गया है। शोध का मूल उद्देश्य यह प्रतिपादित करना है कि संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर ने बौद्ध धम्म को केवल धार्मिक परंपरा के रूप में नहीं, बल्कि प्रकृति-सम्मत जीवनशैली, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व और सतत विकास के व्यवहारिक दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया। इस दृष्टि से उनका योगदान 21वीं शताब्दी में बौद्ध पर्यावरणीय चिंतन (Buddhist Environmental Thought) तथा वैश्विक पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण और प्रेरणादायी उदाहरण के रूप में स्थापित होता है।

बौद्ध धम्म में पर्यावरणीय चेतना का दार्शनिक आधार

आधुनिक युग में पर्यावरण संरक्षण केवल वैज्ञानिक अथवा प्रशासनिक विषय नहीं रह गया है, बल्कि यह नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व का भी विषय बन चुका है। जलवायु परिवर्तन, वनों का तीव्र विनाश, जैव-विविधता का संकट, प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने सम्पूर्ण विश्व को गंभीर संकट के सम्मुख खड़ा कर दिया है। ऐसी स्थिति में बौद्ध धम्म का पर्यावरणीय दर्शन मानवता को एक संतुलित और टिकाऊ जीवन-दृष्टि प्रदान करता है। बौद्ध धम्म प्रकृति को उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि जीवन के सह-अस्तित्वकारी आधार के रूप में स्वीकार करता है। बुद्ध ने मनुष्य और प्रकृति के बीच किसी प्रकार का संघर्ष नहीं माना, बल्कि दोनों के मध्य परस्पर निर्भरता, करुणा और संतुलन को जीवन का आधार बताया।

बौद्ध दर्शन का मूल उद्देश्य केवल मानव दुःख का निवारण नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन स्थापित करना भी है। बुद्ध के जीवन की प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना प्रकृति की गोद में घटित हुई। लुम्बिनी के शालवन में उनका जन्म, बोधगया के पीपल (बोधिवृक्ष) के नीचे ज्ञान प्राप्ति, सारनाथ के मृगदाव में प्रथम उपदेश तथा कुशीनगर के शाल वृक्षों के मध्य महापरिनिर्वाण—ये सभी घटनाएँ यह संकेत देती हैं कि बुद्ध के लिए प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना की सहयात्री थी। इसीलिए बौद्ध परंपरा में वृक्ष, वन, पर्वत, नदियाँ तथा समस्त जीव-जगत सम्मान के पात्र माने गए हैं।

बौद्ध धर्म और प्रकृति का संबंध

बौद्ध धम्म का आधार मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित सह-अस्तित्व की भावना है। बुद्ध ने प्रकृति को विजय प्राप्त करने योग्य वस्तु नहीं माना, बल्कि जीवन के सहयोगी तत्त्व के रूप में देखा। उनके अनुसार मनुष्य उसी समय सुखी रह सकता है जब वह प्रकृति के नियमों के अनुरूप जीवन व्यतीत करे। लोभ, अतिभोग और संसाधनों का अनियंत्रित उपयोग ही पर्यावरण संकट का मूल कारण है। इसलिए बुद्ध ने मध्यम मार्ग (मज्झिमा प्रतिपदा) का उपदेश दिया, जो आवश्यकता और संयम के बीच संतुलन स्थापित करता है।**"सब्बे सत्ता भवंतु सुखितत्ता।"**(करणीय मेत्ता सुत्त)सभी प्राणी सुखी हों, सुरक्षित रहें और कल्याण प्राप्त करें।यह गाथा बौद्ध पर्यावरण-दर्शन की मूल भावना को व्यक्त करती है। यहाँ "सत्ता"

शब्द केवल मनुष्यों के लिए नहीं, बल्कि पशु-पक्षियों, वनस्पतियों और समस्त जीवधारियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार बौद्ध धम्म का करुणा-सिद्धांत सम्पूर्ण जैवमंडल (Biosphere) तक विस्तृत है।

प्रतीत्यसमुत्पाद एवं पारिस्थितिक संतुलन

बौद्ध दर्शन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत**प्रतीत्यसमुत्पाद (Paṭiccasamuppāda)**है। इसका अर्थ है कि संसार की प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तुओं पर आश्रित होकर अस्तित्व में रहती है। कोई भी तत्व पूर्णतः स्वतंत्र नहीं है। यही सिद्धांत आधुनिक पारिस्थितिकी (Ecology) का भी मूल आधार है, जहाँ जल, वायु, वन, मिट्टी, जीव-जंतु और मनुष्य एक-दूसरे पर निर्भर माने जाते हैं।पाली साहित्य में कहा गया है—**"इमस्मिं सति इदं होति।**
इमस्स उप्पादा इदं उप्पज्जति।"इसके होने से वह होता है; इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न होता है।यदि इस सिद्धांत को पर्यावरणीय संदर्भ में देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि यदि वन नष्ट होंगे तो वर्षा प्रभावित होगी, वर्षा कम होगी तो कृषि प्रभावित होगी, कृषि प्रभावित होगी तो मानव जीवन संकट में पड़ेगा। इस प्रकार पर्यावरण का प्रत्येक घटक दूसरे घटक से जुड़ा हुआ है। बुद्ध का यह सिद्धांत आज के जलवायु परिवर्तन (Climate Change) और पारिस्थितिक असंतुलन की वैज्ञानिक व्याख्या से पूर्णतः मेल खाता है।

करुणा, मैत्री, अहिंसा एवं पर्यावरणीय नैतिकता

बौद्ध धम्म में करुणा (Karuṇā), मैत्री (Mettā), मुदिता (Muditā) और उपेक्षा (Upekkhā) को ब्रह्मविहार कहा गया है। इनमें करुणा और मैत्री पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। करुणा का अर्थ केवल मनुष्यों के प्रति दया नहीं, बल्कि प्रत्येक जीव के जीवन के अधिकार का सम्मान करना है। यही कारण है कि बौद्ध धर्म में अनावश्यक हिंसा, पशु-हत्या तथा प्राकृतिक विनाश का विरोध किया गया है।

"न हि वेरेन वेरानिसम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति।"(धम्मपद, 5)

वैर से वैर कभी समाप्त नहीं होता; केवल अवैर (मैत्री) से ही उसका अंत होता है।यह सिद्धांत केवल सामाजिक संबंधों पर ही नहीं, बल्कि मानव और प्रकृति के संबंध पर भी लागू होता है। यदि मनुष्य प्रकृति के प्रति हिंसक व्यवहार करेगा तो उसका परिणाम पर्यावरणीय संकट के रूप में सामने आएगा। इसके विपरीत यदि वह मैत्री और सह-अस्तित्व का मार्ग अपनाएगा तो प्रकृति भी जीवनदायिनी बनी रहेगी।अहिंसा का बौद्ध स्वरूप व्यापक है। यह केवल शारीरिक हिंसा का निषेध नहीं, बल्कि किसी भी प्रकार से जीवों, वृक्षों, जल स्रोतों तथा प्राकृतिक संसाधनों को अनावश्यक क्षति न पहुँचाने का संदेश देता है। आज जैव-विविधता के संरक्षण, वन्यजीव सुरक्षा और प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग की जो अवधारणाएँ विकसित हुई हैं, उनका नैतिक आधार बौद्ध धम्म में प्राचीन काल से विद्यमान है।

बोधिवृक्ष, वन संस्कृति एवं जैव-विविधता का महत्व

बोधिवृक्ष केवल एक वृक्ष नहीं, बल्कि ज्ञान, धैर्य, स्थिरता और पर्यावरणीय चेतना का प्रतीक है। बुद्ध ने जिस पीपल वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया, वह आज भी सम्पूर्ण विश्व के बौद्ध समुदाय के लिए श्रद्धा का केन्द्र है। इससे यह संदेश मिलता है कि प्रकृति केवल भौतिक जीवन का आधार नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति की भी सहयात्री है।बौद्ध विहारों की स्थापना प्रायः शांत वन क्षेत्रों में की जाती थी। इन वनों में भिक्षु ध्यान, अध्ययन

और साधना करते थे। परिणामस्वरूप वे क्षेत्र प्राकृतिक संरक्षण के केन्द्र बन जाते थे। इस प्रकार बौद्ध विहार केवल धार्मिक स्थल नहीं थे, बल्कि पर्यावरण संरक्षण की प्राचीन संस्थाएँ भी थे।पाली साहित्य में वृक्षारोपण के महत्व का उल्लेख मिलता है—

"आरामरोपा वनरोपा,ये जना सेतुकारका।

उदपानं च ददन्ति,तेसादिवा च रत्तिं चसदा पुण्णं पवड्ढति॥"

जो लोग उपवन लगाते हैं, वृक्षारोपण करते हैं, पुल बनाते हैं तथा जल की व्यवस्था करते हैं, उनका पुण्य दिन-रात निरंतर बढ़ता रहता है।यह गाथा पर्यावरण संरक्षण को प्रत्यक्ष रूप से लोककल्याण से जोड़ती है। वृक्षारोपण, जल संरक्षण तथा सार्वजनिक सुविधाओं का निर्माण बौद्ध परंपरा में सामाजिक सेवा का अंग माना गया है। आज के संदर्भ में यह सतत विकास (Sustainable Development), हरित परिसर (Green Campus) तथा सामुदायिक पर्यावरण संरक्षण की प्रेरणा प्रदान करती है।इस प्रकार स्पष्ट होता है कि बौद्ध धम्म का पर्यावरणीय दर्शन आधुनिक पर्यावरण विज्ञान का विरोधी नहीं, बल्कि उसका नैतिक एवं आध्यात्मिक आधार है। करुणा, संयम, सह-अस्तित्व और परस्पर निर्भरता जैसे सिद्धांत आज के वैश्विक पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु अत्यंत प्रासंगिक हैं। इन्हीं सिद्धांतों को आधुनिक सामाजिक और शैक्षिक जीवन में व्यवहारिक रूप प्रदान करने का प्रयास संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर ने किया, जिसका विस्तृत विश्लेषण अगले भाग में प्रस्तुत किया जाएगा।

संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर की धम्म-दृष्टि और पर्यावरणीय चिंतन

संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर का व्यक्तित्व केवल एक चिकित्सक, शिक्षाविद् अथवा प्रशासक तक सीमित नहीं था, बल्कि वे बौद्ध धम्म के उन मूल आदर्शों की संवाहिका थीं, जिनमें करुणा, प्रज्ञा, मैत्री, अहिंसा तथा समस्त प्राणियों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना निहित है। उन्होंने यह अनुभव किया कि आधुनिक समाज में पर्यावरणीय संकट केवल वैज्ञानिक अथवा तकनीकी समस्या नहीं है, बल्कि यह मानवीय चेतना के असंतुलन का परिणाम है। इसलिए पर्यावरण संरक्षण का वास्तविक आधार केवल कानून या प्रशासन नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक चेतना हो सकता है। इसी कारण उन्होंने बौद्ध धम्म को प्रकृति के साथ संतुलित जीवन का सर्वोत्तम मार्ग माना।

बुद्ध के उपदेशों में प्रकृति को केवल जीवन निर्वाह का साधन नहीं, बल्कि साधना का सहयोगी माना गया है। भगवान बुद्ध ने अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं—जन्म, ज्ञानप्राप्ति, प्रथम उपदेश तथा महापरिनिर्वाण—सभी को वृक्षों और प्राकृतिक वातावरण के मध्य सम्पन्न किया। डॉ. मुक्ति भटनागर ने इस ऐतिहासिक सत्य को आधुनिक जीवन से जोड़ते हुए यह स्पष्ट किया कि यदि मानव प्रकृति से दूर हो जाएगा, तो वह आध्यात्मिक और मानसिक दोनों स्तरों पर असंतुलित हो जाएगा। इसीलिए उन्होंने शिक्षा और पर्यावरण को एक-दूसरे का पूरक माना।

पाली साहित्य में कहा गया है—

"सब्बे तस्सन्ति दण्डस्स, सब्बे भायन्ति मच्चुनो।

अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥"(धम्मपद, 129)

अर्थात् सभी प्राणी दण्ड से भयभीत होते हैं और सभी मृत्यु से डरते हैं। इसलिए स्वयं को उनके स्थान पर रखकर न किसी को कष्ट देना चाहिए और न किसी को कष्ट पहुँचाने के लिए प्रेरित करना चाहिए।यह गाथा केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त जीव-जगत के प्रति करुणा और संवेदनशीलता का संदेश देती है। डॉ. मुक्ति भटनागर ने इसी सिद्धांत को पर्यावरणीय नैतिकता का आधार माना। उनका विश्वास था कि वृक्षों, पशु-पक्षियों, जल, भूमि और वायु के प्रति संवेदनशील होना भी धम्म का पालन है।

डॉ. मुक्ति भटनागर का जीवन-दर्शन

डॉ. मुक्ति भटनागर का जीवन-दर्शन समन्वयवादी था। उन्होंने आधुनिक चिकित्सा विज्ञान, भारतीय संस्कृति और बौद्ध दर्शन के बीच एक संतुलित संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। एक चिकित्सक के रूप में वे जानती थीं कि शारीरिक स्वास्थ्य केवल औषधियों पर निर्भर नहीं करता, बल्कि स्वच्छ पर्यावरण, शुद्ध वायु, हरित परिवेश और मानसिक शांति भी उसके लिए आवश्यक हैं। यही कारण है कि उन्होंने शिक्षा संस्थानों में प्राकृतिक वातावरण के निर्माण पर विशेष बल दिया।

उनके विचार में विश्वविद्यालय केवल ज्ञान अर्जन का स्थान नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों के विकास का केंद्र होना चाहिए। यदि शिक्षा केवल रोजगार प्राप्त करने का साधन बन जाए और उसमें प्रकृति, संस्कृति तथा नैतिकता के प्रति संवेदनशीलता न हो, तो वह अधूरी शिक्षा होगी। इसलिए उन्होंने शिक्षा को धम्म, संस्कृति और पर्यावरण के साथ जोड़ने का प्रयास किया।

धम्म और प्रकृति के समन्वय की अवधारणा

डॉ. मुक्ति भटनागर की धम्म-दृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह था कि उन्होंने बौद्ध धर्म को केवल पूजा-पद्धति के रूप में नहीं देखा। उनके लिए धम्म जीवन जीने की ऐसी पद्धति थी, जिसमें प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है। वे मानती थीं कि मनुष्य और प्रकृति परस्पर निर्भर हैं। यदि प्रकृति सुरक्षित रहेगी, तभी मानव सभ्यता भी सुरक्षित रह सकेगी।इस विचार की पुष्टि बुद्ध के प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धांत से होती है, जिसके अनुसार प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तुओं पर निर्भर होकर उत्पन्न होती है। यही सिद्धांत आधुनिक पारिस्थितिकी (Ecology) का भी आधार है। डॉ. मुक्ति भटनागर ने इस सिद्धांत को व्यवहार में उतारने का प्रयास किया। उन्होंने विद्यार्थियों को यह समझाने का प्रयास किया कि वृक्षारोपण, जल संरक्षण, स्वच्छता तथा हरित परिसर का निर्माण केवल सामाजिक दायित्व नहीं, बल्कि धम्म का पालन भी है।

पाली ग्रंथों में कहा गया है—

"आरोग्यपरमा लाभा, सन्तुट्ठि परमं धनं।

विस्सासपरमा ञाति, निब्बानं परमं सुखं॥"(धम्मपद, 204)

अर्थात् आरोग्य सबसे बड़ा लाभ है, संतोष सबसे बड़ा धन है, विश्वास सबसे बड़ा संबंधी है और निर्वाण परम सुख है।यह गाथा स्पष्ट करती है कि स्वास्थ्य का संबंध केवल शरीर से नहीं, बल्कि समग्र जीवन-पद्धति से है। डॉ. मुक्ति भटनागर ने इस सिद्धांत को चिकित्सा, शिक्षा और पर्यावरण के साथ जोड़कर देखा।

पर्यावरण संरक्षण को सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में स्थापित करना

डॉ. मुक्ति भटनागर का मानना था कि पर्यावरण संरक्षण किसी एक विभाग या संस्था का कार्य नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज का नैतिक उत्तरदायित्व है। उन्होंने विद्यार्थियों, शिक्षकों और समाज के विभिन्न वर्गों को वृक्षारोपण, स्वच्छता और पर्यावरण संरक्षण से जोड़ने के अनेक प्रयास किए। उनके नेतृत्व में आयोजित विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों में पर्यावरण संरक्षण को प्रमुख स्थान दिया गया।उनकी दृष्टि में पर्यावरणीय संकट का समाधान केवल वैज्ञानिक तकनीकों से संभव नहीं है। जब तक मनुष्य के भीतर प्रकृति के प्रति श्रद्धा और उत्तरदायित्व की भावना विकसित नहीं होगी, तब तक पर्यावरण संरक्षण स्थायी नहीं हो सकता। यही कारण है कि उन्होंने धम्म के मूल्यों को पर्यावरणीय चेतना का आधार बनाया।

पाली साहित्य में मैत्री भावना का अत्यंत सुंदर वर्णन मिलता है—

"माता यथा नियं पुत्तं आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे।

एवंपि सब्बभूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं॥"(करणीय मेत्ता सुत्त)

अर्थात् जैसे माता अपने एकमात्र पुत्र की रक्षा अपने प्राणों की परवाह किए बिना करती है, वैसे ही सभी प्राणियों के प्रति असीम मैत्री का भाव विकसित करना चाहिए।यह गाथा आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता का आधार प्रस्तुत करती है। डॉ. मुक्ति भटनागर ने इसी भावना को समाज में विकसित करने का प्रयास किया।

शिक्षा, संस्कृति एवं पर्यावरण का एकीकृत मॉडल

डॉ. मुक्ति भटनागर की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में शिक्षा, संस्कृति और पर्यावरण का समन्वित मॉडल विकसित करने का प्रयास उल्लेखनीय है। उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि विद्यार्थियों को केवल पुस्तकीय ज्ञान दिया जाए और उन्हें प्रकृति तथा संस्कृति से न जोड़ा जाए, तो उनका व्यक्तित्व अधूरा रह जाएगा। इसलिए उन्होंने विश्वविद्यालय परिसर को केवल शैक्षणिक भवनों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे हरित, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक वातावरण से समृद्ध बनाने का प्रयास किया।उनके द्वारा विकसित बोधि उपवन, बुद्ध प्रतिमाएँ, स्तूप, ध्यान स्थल तथा हरित परिसर केवल सौंदर्यवर्धन के साधन नहीं थे, बल्कि वे विद्यार्थियों में धम्म, अनुशासन, करुणा और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने के माध्यम थे। यह दृष्टिकोण आधुनिक "ग्रीन कैंपस" (Green Campus) की अवधारणा से भी आगे बढ़कर "धम्म-कैंपस" (Dhamma Campus) की संकल्पना प्रस्तुत करता है।उन्होंने यह संदेश दिया कि पर्यावरण संरक्षण तभी प्रभावी होगा जब शिक्षा में नैतिकता, संस्कृति और आध्यात्मिक मूल्योंका समावेश किया जाए। उनके लिए पर्यावरण केवल वृक्षारोपण तक सीमित विषय नहीं था, बल्कि वह मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करने का माध्यम था।

संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर का पर्यावरणीय चिंतन आधुनिक युग में बौद्ध धम्म की व्यावहारिक प्रासंगिकता का सशक्त उदाहरण है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि धम्म केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग नहीं, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय कल्याण का भी आधार है। शिक्षा, चिकित्सा, संस्कृति और प्रकृति को एक सूत्र में पिरोकर उन्होंने ऐसा समन्वित मॉडल प्रस्तुत किया, जो वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। उनके विचार यह प्रेरणा देते हैं कि करुणा, मैत्री और अहिंसा जैसे बौद्ध मूल्य केवल मानवीय संबंधों तक सीमित न रहकर प्रकृति के साथ हमारे व्यवहार का भी आधार बनने चाहिए। यही उनकी धम्म-दृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता और स्थायी विरासत है।

बोधि उपवन, बौद्ध सांस्कृतिक धरोहर एवं पर्यावरण संरक्षण : संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर का समन्वित योगदान

बौद्ध धर्म का मूल स्वरूप केवल आध्यात्मिक साधना या निर्वाण की प्राप्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण सृष्टि के साथ संतुलित सह-अस्तित्व की जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करता है। भगवान बुद्ध ने मानव और प्रकृति के मध्य गहरे संबंध को अपने जीवन और उपदेशों के माध्यम से स्पष्ट किया। उनका जन्म लुम्बिनी के शालवन में हुआ, बोधगया में पीपल वृक्ष के नीचे उन्हें सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति हुई, सारनाथ के मृगदाव में उन्होंने प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन किया तथा कुशीनगर के शाल वृक्षों के मध्य महापरिनिर्वाण प्राप्त किया। यह संयोग नहीं, बल्कि यह संकेत है कि बौद्ध धम्म का विकास प्रकृति की गोद में हुआ। इसलिए बौद्ध परंपरा में वृक्ष, वन, पर्वत, नदियाँ और समस्त जीव-जगत केवल प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि धम्म के सहयात्री माने गए हैं। इसी परंपरा को आधुनिक युग में संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर ने अपने कार्यों के माध्यम से पुनर्जीवित करने

का महत्वपूर्ण प्रयास किया। उन्होंने बौद्ध सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण को केवल ऐतिहासिक स्मारकों के निर्माण तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें पर्यावरणीय चेतना, सांस्कृतिक पुनर्जागरण और मानवीय मूल्यों के विकास का माध्यम बनाया।

डॉ. मुक्ति भटनागर का यह विश्वास था कि वर्तमान युग का सबसे बड़ा संकट केवल प्रदूषण या जलवायु परिवर्तन नहीं, बल्कि मनुष्य का प्रकृति से भावनात्मक विच्छेद है। आधुनिक विकास की अंधी दौड़ ने मनुष्य को प्रकृति का स्वामी बना दिया है, जबकि बौद्ध दर्शन उसे प्रकृति का सहचर मानता है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए उन्होंने विश्वविद्यालय परिसर में बोधिवृक्ष, हरित उपवन, बुद्ध प्रतिमाओं, ध्यान स्थलों तथा स्तूपों का निर्माण कराया। उनका उद्देश्य केवल परिसर को सौंदर्यपूर्ण बनाना नहीं था, बल्कि विद्यार्थियों, शोधार्थियों और आगंतुकों में यह भावना विकसित करना था कि प्रकृति और संस्कृति एक-दूसरे की पूरक हैं। यदि पर्यावरण सुरक्षित रहेगा तभी सभ्यता भी सुरक्षित रह सकेगी।

बोधिवृक्ष का महत्व बौद्ध परंपरा में अत्यंत विशिष्ट है। यह केवल वह वृक्ष नहीं है जिसके नीचे सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बने, बल्कि यह ज्ञान, धैर्य, करुणा और आत्मबोध का सार्वभौमिक प्रतीक है। डॉ. मुक्ति भटनागर ने बोधिवृक्ष को विश्वविद्यालय की सांस्कृतिक पहचान के रूप में स्थापित कर यह संदेश दिया कि शिक्षा का अंतिम लक्ष्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि आत्मबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व है। आज जब विश्व जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता के विनाश और पर्यावरणीय असंतुलन जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है, तब बोधिवृक्ष मानवता को धैर्य, संतुलन और सह-अस्तित्व का संदेश देता है।धम्मपद में कहा गया है—

"सब्बपापस्स अकरणं,कुसलस्स उपसम्पदा।

सचित्तपरियोदपनं,एतं बुद्धान सासनं॥"(धम्मपद, 183)

समस्त पापकर्मों से दूर रहना, सत्कर्म करना तथा अपने चित्त को निर्मल बनाना ही बुद्ध का उपदेश है।यदि इस गाथा का पर्यावरणीय अर्थ ग्रहण किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति का विनाश भी एक प्रकार का अकुशल कर्म है और पर्यावरण संरक्षण कुशल कर्म का श्रेष्ठ उदाहरण है। संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर ने पर्यावरण संरक्षण को इसी नैतिक दृष्टि से देखा। उनके विचार में वृक्षारोपण, जल संरक्षण, स्वच्छता तथा हरित परिसर का निर्माण केवल प्रशासनिक कार्यक्रम नहीं, बल्कि धम्म की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।उनके नेतृत्व में विकसित बोधि उपवन ने विश्वविद्यालय को केवल एक शैक्षणिक संस्थान न रहने देकर सांस्कृतिक चेतना के केंद्र में परिवर्तित कर दिया। यहाँ आने वाले विद्यार्थियों के लिए प्रकृति अध्ययन का विषय नहीं, बल्कि अनुभव का माध्यम बन गई। शांत वातावरण, वृक्षों की हरियाली, बुद्ध प्रतिमाओं की गरिमा और ध्यान स्थलों की निर्मलता विद्यार्थियों के भीतर मानसिक संतुलन तथा आध्यात्मिक संवेदनशीलता का विकास करती है। यह आधुनिक "ग्रीन कैंपस" की अवधारणा से आगे बढ़कर "धम्म कैंपस" की संकल्पना प्रस्तुत करता है।

संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर का एक महत्त्वपूर्ण योगदान बौद्ध सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण के क्षेत्र में भी रहा। उन्होंने बुद्ध प्रतिमाओं, स्तूपों, ध्यान स्थलों और बोधि उपवन को विश्वविद्यालय परिसर का अभिन्न अंग बनाकर बौद्ध संस्कृति को जीवंत स्वरूप प्रदान किया। सामान्यतः धार्मिक प्रतिमाएँ केवल पूजा-अर्चना का माध्यम मानी जाती हैं, किन्तु उन्होंने इन्हें शिक्षा, संस्कृति और नैतिक मूल्यों के प्रसार का माध्यम बनाया। बुद्ध प्रतिमा विद्यार्थियों को करुणा, संयम और विवेक का संदेश देती है, स्तूप इतिहास और परंपरा की स्मृति को जीवित रखते हैं तथा ध्यान स्थल आत्मचिंतन और मानसिक स्वास्थ्य का वातावरण निर्मित करते हैं।उनकी यह दृष्टि आधुनिक "लिविंग हेरिटेज" (Living Heritage) की अवधारणा के अत्यंत निकट है। आज विश्व के अनेक देशों में सांस्कृतिक धरोहरों को केवल पुरातात्त्विक स्मारकों के रूप में संरक्षित किया जाता है, जबकि डॉ. मुक्ति भटनागर ने उन्हें दैनिक जीवन का सक्रिय हिस्सा बनाया। उनके द्वारा स्थापित धम्म-स्थल केवल दर्शनीय स्थल नहीं हैं, बल्कि वे

शिक्षा, अनुसंधान, ध्यान, सांस्कृतिक संवाद और पर्यावरणीय चेतना के केंद्र हैं। यही कारण है कि उनके प्रयासों को बौद्ध सांस्कृतिक संरक्षण का आधुनिक भारतीय मॉडल कहा जा सकता है।

संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर का पर्यावरणीय दृष्टिकोण केवल वृक्षारोपण अथवा हरित परिसर के निर्माण तक सीमित नहीं था, बल्कि वह बौद्ध सांस्कृतिक विरासत और प्राकृतिक संरक्षण के समन्वित विकास की व्यापक अवधारणा पर आधारित था। उनका विश्वास था कि यदि सांस्कृतिक धरोहरों को प्राकृतिक परिवेश से अलग कर दिया जाए तो वे केवल स्थापत्य कला के निर्जीव स्मारक बनकर रह जाएँगी, जबकि यदि उन्हें प्रकृति की गोद में विकसित किया जाए तो वे समाज के नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के सशक्त केंद्र बन सकते हैं। यही कारण है कि उन्होंने विश्वविद्यालय परिसर में निर्मित बुद्ध प्रतिमाओं, स्तूपों, ध्यान स्थलों तथा बोधि उपवन को एक-दूसरे से पृथक न रखकर एक समन्वित धम्म-परिसर (Integrated Dhamma Landscape) के रूप में विकसित किया। इस मॉडल में हरित पर्यावरण, आध्यात्मिक शांति, सांस्कृतिक चेतना तथा शैक्षणिक वातावरण परस्पर पूरक दिखाई देते हैं। यह दृष्टिकोण आज की वैश्विक "ग्रीन हेरिटेज" (Green Heritage) की अवधारणा से पूर्णतः मेल खाता है, जहाँ सांस्कृतिक विरासत और पर्यावरण संरक्षण को एक-दूसरे का सहयोगी माना जाता है।

पाली साहित्य में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और मैत्रीभाव को अत्यंत महत्व दिया गया है।करणीय मेत्ता सुत्तमें कहा गया है—

"ये केचि पाणभूतत्थि, तसा वा थावरा वा अनवसेसा।

दीघा वा ये महन्ता वा, मज्झिमा रस्सका अणुकथूला॥"

इस संसार में जितने भी प्राणी हैं—चलने वाले अथवा स्थिर, छोटे अथवा बड़े, दृश्य अथवा अदृश्य—सभी के प्रति मैत्री और करुणा का भाव रखना चाहिए।यह गाथा पर्यावरणीय नैतिकता की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। आधुनिक पर्यावरण विज्ञान जिस जैव विविधता (Biodiversity) की रक्षा की बात करता है, उसका नैतिक आधार बुद्ध ने ढाई हजार वर्ष पूर्व ही प्रस्तुत कर दिया था। संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर ने इसी बौद्ध दृष्टि को अपने संस्थानों के विकास में आत्मसात किया। उन्होंने प्रकृति को केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व की अनिवार्य शर्त माना। इसीलिए उनके द्वारा विकसित बोधि उपवन में वृक्ष, पौधे, पुष्प, जल और शांत वातावरण मिलकर धम्म का जीवंत अनुभव कराते हैं।

डॉ. मुक्ति भटनागर के प्रयासों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह था कि उन्होंने बौद्ध सांस्कृतिक धरोहरों को शिक्षा और अनुसंधान से जोड़ा। विश्वविद्यालय परिसर में स्थापित बुद्ध प्रतिमाएँ केवल धार्मिक श्रद्धा का विषय नहीं हैं, बल्कि वे विद्यार्थियों को भारतीय सांस्कृतिक इतिहास, बौद्ध दर्शन और नैतिक मूल्यों के अध्ययन के लिए प्रेरित करती हैं। स्तूप केवल स्थापत्य संरचनाएँ नहीं हैं, बल्कि वे बौद्ध सभ्यता की ऐतिहासिक निरंतरता के प्रतीक हैं। इसी प्रकार ध्यान स्थल केवल ध्यानाभ्यास के लिए निर्मित स्थान नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य, आत्म-अनुशासन और आंतरिक शांति के केंद्र हैं। आधुनिक जीवन की तनावपूर्ण परिस्थितियों में ऐसे स्थलों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इस प्रकार डॉ. मुक्ति भटनागर ने बौद्ध धरोहरों को वर्तमान समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप जीवंत बनाया।

उनकी पर्यावरणीय दृष्टि में सांस्कृतिक पर्यटन (Cultural Tourism) और हरित पर्यटन (Eco Tourism) का भी विशेष महत्व था। आज विश्व भर में बौद्ध पर्यटन केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि वह सांस्कृतिक अध्ययन, ऐतिहासिक अनुसंधान तथा पर्यावरणीय अनुभव का भी माध्यम बन चुका है। संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर ने विश्वविद्यालय परिसर को इस प्रकार विकसित किया कि वहाँ आने वाला प्रत्येक आगंतुक भारतीय संस्कृति, बौद्ध धम्म और प्राकृतिक सौंदर्य का एक साथ अनुभव कर सके। इस प्रकार परिसर स्वयं एक जीवंत सांस्कृतिक प्रयोगशाला बन गया। यह प्रयास आधुनिक विश्वविद्यालयों के लिए भी प्रेरणास्रोत है कि शिक्षा संस्थान केवल कक्षाओं तक सीमित न रहकर संस्कृति और प्रकृति के संरक्षण के केंद्र भी बनें।धम्मपद में कहा गया है—

"अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति।

तस्मा संजमयत्तानं, अस्सं भद्रंव वाणिजो॥"(धम्मपद, 380)

मनुष्य स्वयं अपना रक्षक है और स्वयं अपना मार्गदर्शक है। इसलिए उसे अपने जीवन को उसी प्रकार संयमित करना चाहिए, जैसे कुशल व्यापारी उत्तम घोड़े को नियंत्रित करता है।इस गाथा का पर्यावरणीय अर्थ यह है कि पृथ्वी और प्रकृति की रक्षा का उत्तरदायित्व भी अंततः मनुष्य का ही है। यदि मनुष्य अपने आचरण को संयमित नहीं करेगा, तो पर्यावरणीय संकट और अधिक गंभीर होता जाएगा। डॉ. मुक्ति भटनागर ने अपने जीवन और कार्यों से इसी आत्मसंयम तथा उत्तरदायित्व का उदाहरण प्रस्तुत किया।उनकी दृष्टि में शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का निर्माण भी है। उन्होंने विद्यार्थियों को वृक्षारोपण, स्वच्छता, जल संरक्षण और हरित जीवनशैली के लिए प्रेरित किया। उनके द्वारा निर्मित बोधि उपवन में समय-समय पर आयोजित सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक गतिविधियाँ विद्यार्थियों को यह अनुभव कराती थीं कि प्रकृति का संरक्षण किसी सरकारी योजना का विषय नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक का नैतिक कर्तव्य है। इस प्रकार उन्होंने पर्यावरण शिक्षा को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया।संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर की धम्म-दृष्टि में करुणा का विस्तार केवल मनुष्य तक सीमित नहीं था। वे समस्त जीव-जगत के प्रति संवेदनशीलता को धम्म का अनिवार्य तत्व मानती थीं। यह विचारमेत्ता सुत्तकी निम्न पाली गाथा में भी व्यक्त हुआ है—

"माता यथा नियं पुत्तं आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे।

एवंपि सब्बभूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं॥"

जैसे माता अपने इकलौते पुत्र की रक्षा अपने प्राणों की परवाह किए बिना करती है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति असीम मैत्री का भाव रखना चाहिए।यही भावना आधुनिक पर्यावरणीय दर्शन का भी मूल आधार है। प्रकृति की रक्षा तभी संभव है जब उसके प्रति स्वामित्व नहीं, बल्कि आत्मीयता का भाव विकसित हो। संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर ने अपने कार्यों के माध्यम से इसी आत्मीयता को व्यवहार में रूपांतरित किया।

उनके द्वारा निर्मित बोधि उपवन, बुद्ध प्रतिमाएँ, स्तूप और ध्यान स्थल केवल भौतिक संरचनाएँ नहीं हैं, बल्कि वे यह संदेश देते हैं कि संस्कृति और प्रकृति का संरक्षण एक-दूसरे से अविभाज्य हैं। यदि सांस्कृतिक विरासत नष्ट होगी तो पर्यावरणीय चेतना भी कमजोर होगी, और यदि पर्यावरण नष्ट होगा तो सांस्कृतिक स्मारक भी अपना वास्तविक स्वरूप खो देंगे। इसीलिए उन्होंने दोनों के समन्वित संरक्षण को महत्व दिया।

आज जब संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्यों (Sustainable Development Goals) के अंतर्गत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सतत नगर, जलवायु संरक्षण और जैव विविधता के संरक्षण पर बल दिया जा रहा है, तब संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर के कार्य इन वैश्विक लक्ष्यों के व्यावहारिक उदाहरण के रूप में सामने आते हैं। उन्होंने किसी सैद्धांतिक विमर्श तक सीमित न रहकर विश्वविद्यालय परिसर में ऐसे मॉडल का निर्माण किया जिसमें शिक्षा, संस्कृति, पर्यावरण, आध्यात्मिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व का समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह मॉडल भविष्य के शैक्षणिक संस्थानों के लिए भी अनुकरणीय है।

उपसंहार

समग्रतः कहा जा सकता है कि संघमाता डॉ. मुक्ति भटनागर ने बोधि उपवन, बुद्ध प्रतिमाओं, स्तूपों, ध्यान स्थलों तथा हरित परिसर के माध्यम से बौद्ध धम्म के पर्यावरणीय और सांस्कृतिक पक्ष को आधुनिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि धम्म केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, नैतिक शिक्षा और मानवीय कल्याण का सशक्त आधार भी है। उनके द्वारा

विकसित बोधि उपवन प्रकृति, संस्कृति और आध्यात्मिकता के त्रिवेणी संगम का प्रतीक है, जबकि बौद्ध सांस्कृतिक धरोहरों का संरक्षण उनके दूरदर्शी नेतृत्व और धम्म के प्रति गहन समर्पण का प्रमाण है। आधुनिक पर्यावरणीय संकट के युग में उनका यह समन्वित दृष्टिकोण न केवल भारत, बल्कि वैश्विक समाज के लिए भी प्रेरणास्रोत है। यही उनकी स्थायी विरासत है, जो आने वाली पीढ़ियों को करुणा, मैत्री, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व और सांस्कृतिक संरक्षण की दिशा में निरंतर प्रेरित करती रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुब्बा, सी. (1995) द कल्चर एण्ड रिलिजन ऑफ लिम्बू। काठमाण्डू: रत्न पुस्तक भण्डार।
2. सूरज, नरेन। (1994) बुद्धिस्ट सोशल एण्ड मॉरल एजुकेशन। प्राइमल पब्लिकेशन, कलकत्ता।
3. सूर्य रतिराम (1985) बौद्ध चर्या विधि, उत्तर प्रदेश: भारतीय बौद्ध महासभा ।
4. सेंगर, शैलेन्द्र (2005) प्राचीन भारत का इतिहास। नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स।
5. स्टेन, बी. (2012) ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. स्वामी अनन्त कुमार (2010) बुद्ध एंड गॉस्पेल ऑफ बुद्ध ।दिल्लीः मुंशी राम मनोहर लाल।
7. हवलदार, त्रिपाठी। (1960) मूल्य शिक्षा एवं बौद्ध धर्म और विहार। पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
8. हिरियन्ना, एम. (1997). मूल्य शिक्षा एवं भारतीय दर्शन की रूपरेखा। राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली।
9. डॉ. अतुल कृष्ण (2024) जीवन तरंगिणी मेरी जीवन यात्रा : भाग 1 वर्ष 1953 से 1980 तक। नई दिल्ली: शिवांक प्रकाशन।
10. डॉ. अतुल कृष्ण (2025) जीवन तरंगिणी मेरी जीवन यात्रा : भाग 2 वर्ष 1981 से 1990 तक। मेरठ: विद्या प्रकाशन मंदिर प्रा. लि.।
11. डॉ. अतुल कृष्ण (2025) जीवन तरंगिणी मेरी जीवन यात्रा : भाग 3 वर्ष 1991 से 2001 तक। मेरठ: विद्या प्रकाशन मंदिर प्रा. लि.।
12. डॉ. अतुल कृष्ण (2025) राष्ट्र-अनुभूति (माध्यमिक संस्करण भाग-1)। मुजफ्फरनगर: वत्स मीडिया एंड पब्लिशिंग हाउस।
13. डॉ. अतुल कृष्ण (2026) जीवन तरंगिणी मेरी जीवन यात्रा : भाग 4 वर्ष 2001 से 2010 तक। मेरठ: विद्या प्रकाशन मंदिर प्रा. लि.।